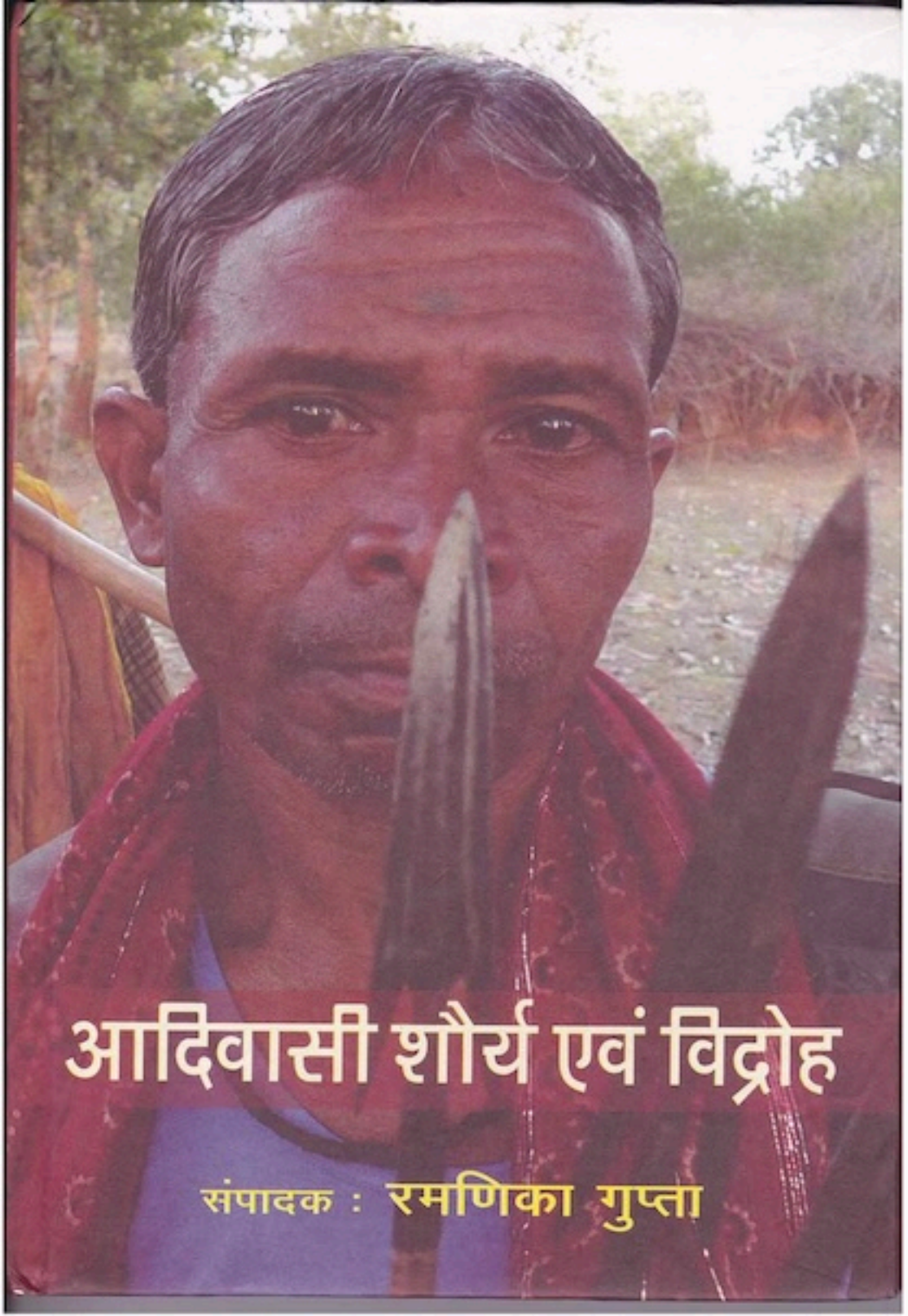

आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह

संपादक : रमणिका गुप्ता

सर्वप्रथम हमें पूर्वोत्तर के इतिहास में जाना जरूरी है, जिससे यह पता चलता है कि वे अंग्रेज़ों, जुल्मी राजाओं या किसी भी अन्याय के ख़िलाफ़ लड़े।

इस पुस्तक में हमने अलग-अलग भाषा व राज्यों के वीर नायकों व नायिकाओं की कथाओं के अतिरिक्त पूर्वोत्तर के भिन्न राज्यों में हुए विद्रोहों, प्रतिरोधात्मक आन्दोलनों पर शोध-परक गाथाएँ व सामग्री प्रस्तुत की है। ये सभी गाथाएँ–लिजिन्द्रियां, लोककथाएँ या लोकगीत व टिप्पणियाँ पूर्वोत्तर के ही लेखकों द्वारा लिखी गई हैं। हमने इनका चयन कर हिन्दी में अनूदित कर प्रस्तुत किया है। इनके चयन और सम्पादन में काफी समय लगा। चूंकि अनूदित सामग्री की भाषा को परिष्कृत भी करना पड़ा हमने हिन्दी में कुछ गाथाएँ पूर्वोत्तर में उपलब्ध भिन्न ग्रन्थों व दस्तावेजों में दर्ज टिप्पणियों के आधार पर तैयार करके भी प्रस्तुत की गई हैं।

एक ही नायक पर भिन्न-भिन्न लेखकों ने अपने-अपने क्षेत्र में उपलब्ध सामग्री (लोकगीत, किवदंतियों, लोककथाएँ, ऐतिहासिक दस्तावेज आदि) से लेकर अपने-अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत की है। हमने सभी को सम्मानित करने का प्रयास किया है ताकि पूर्वोत्तर में घटित इस इतिहास को–गहराई तक समझा और जाना जा सके और शेष भारत उनसे अपना दर्द का रिश्ता जोड़ कर संवाद कायम करे।

–'सम्पादकीय' से

इतिहास के पन्ने सिरजती पूर्वोत्तर की कलम

लोक साहित्य में इतिहास, शौर्य एवं विद्रोह

पूर्वोत्तर के साहित्यकारों ने अपने लोकगीतों, लोककथाओं से और शोधकर्ताओं ने गांव-गांव जाकर बड़े-बूढ़ों से अपना इतिहास जुटाना शुरू कर दिया। उनकी शौर्य-गाथाएँ जो भारतीय इतिहास व साहित्य में स्थान नहीं पा सकीं लोक साहित्य में सदैव मौजूद रहीं। आज उन पर पूर्वोत्तर की समकालीन क़लम भी चल रही है। ये गाथाएँ, नाटक, लिजिन्द्री, कहानी व गीतों के रूप में प्रस्तुत हो रही हैं तो इतिहास के पृष्ठों को भी सिरज रही हैं। इसलिए सर्वप्रथम हमें पूर्वोत्तर के इतिहास में जाना जरूरी है, जिससे यह पता चलता है कि वे अंग्रेज़ों, जुल्मी राजाओं या किसी भी अन्याय के ख़िलाफ़ लड़े। उनका पूरा लोक-साहित्य उन शौर्यगाथाओं व बेलैड्स (Ballads) से भरा पड़ा है। तिरोत सिं, नङबाह, पा तागेम संगमा, वीरांगना रानी रूपलियानी जैसे दर्जनों बीर शहीद हुए हैं। 1857 के तथाकथित स्वतंत्रता युद्ध के बहुत पहले सन् 1773 में ही, यानी 85 वर्ष पहले ही पूर्वोत्तरवासियों ने अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ वर्तमान असम और मेघालय में युद्ध शुरू कर दिया था। दरअसल यह राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए अंग्रेज़ों के खिलाफ़ बग़ावत की शुरुआत थी। मेघालय के गारो-जैन्तिया लोग अंग्रेज़ों से तीन शताब्दियों तक लोहा लेते रहे।

अंग्रेज़ों से सबसे पहला युद्ध 1774 में शुरू हुआ जब मेजर हैनिकर ने जैन्तिया पर हमला किया। 1826 तक ऐसे ही चलता रहा। जब 1824 में बर्मा ने कछार पर हमला किया तब अंग्रेजों को जैन्तिया राज का महत्त्व समझ में आया। अंग्रेजों ने बर्मा की सेना के ख़िलाफ़ राजा से अपनी सेना की टुकड़ी भेजने की मांग की, पर राजा ऐसा कोई

समझौता नहीं करना चाहते थे जिससे उनकी आज़ादी को ख़तरा पहुंचे। उन्होंने अंग्रेज़ों की मदद में अपनी सेना की टुकड़ी नहीं भेजी। इधर 1822 में ब्रिटिश प्रशासक डेविड स्कॉट ने संगठित रूप से जैन्तिया-गारो क्षेत्र पर हमले करने शुरू कर दिए थे, जिन्हें जनता ने नाकाम कर दिया था। 1826 से ही मेघालय के गारो जैन्तिया सरदारों ने अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने की योजना बना ली थी। इसके लिए राजा तिरोत सिं ने चन्द्रकांत का समर्थन भी प्राप्त कर लिया था, जो ख़ुद को अहोम वंश के असम राज्य का दावेदार कहता था और अंग्रेजों का कट्टर शत्रु था। दरअसल ब्रिटिश प्रशासक डेविड स्कॉट सिलहेट से असम तक जैन्तिया क्षेत्र से होकर निकलने वाले रूट की सड़क बनाना चाहते थे, लेकिन चेरापूंजी और मिलिएम के सरदारों ने इसकी इजाज़त नहीं दी। उलटे राजा तिरोत सिं ने तो अपने क्षेत्र से होकर उनके जाने पर भी रोक लगा दी। इतना ही नहीं उन्होंने असम राज्य के कतिपय क्षेत्रों पर अपना दावा भी ठोक दिया। सारा क्षेत्र विद्रोह के लिए विचलित होकर कुलबुलाने लगा।

इसी बीच नौंगख्लाओ की घटना घट गई। हुआ यह कि जैसे ही ब्रिटिश प्रशासक डेविड स्कॉट ने नौंगख्लाओ छोड़ा, उसके अगले ही दिन यानी 5 मई 1829 को विद्रोहियों ने अंग्रेज़ सैनिकों की टुकड़ी पर धावा बोल दिया, जिसमें अंग्रेज अफसरों समेत बड़ी संख्या में अंग्रेज़ सैनिक भी मारे गये। अंग्रेज़ इसे नरसंहार की संज्ञा देते हैं। यह युद्ध तिरोत सिं के नेतृत्व में तीन वर्ष यानी 1831 तक चला। इस युद्ध से अंग्रेज़ इतना आजिज़ आ चुके थे कि हताश होकर वे इसे मनहूस युद्ध कहने लगे थे। अंततः बहुत से बहादुर योद्धाओं के शहीद होने और लंबी लड़ाई के बाद 9 जनवरी 1833 में यह युद्ध समाप्त हुआ। तिरोत सिं को अंग्रेज़ों ने नज़रबंद कर दिया।

1860 में अंग्रेज़ों ने जैन्तिया हिल्स में पुनः कर लगाने की घोषणा कर दी, जिससे वहां की सारी जनता भड़क उठी। दरअसल खासी-गारो परम्परा में राज्य या राजा द्वारा कर लगाने की कोई व्यवस्था ही नहीं थी—यहां तक कि जनता द्वारा चुना हुआ सी.एम., जो एक राजा की हैसियत रखता था—को भी प्रजा पर टैक्स, लेवी या कर लगाने का अधिकार नहीं था। वह हाट बाजार से उपहार के रूप में मिले सामानों से अपनी गुज़र करता था और प्रशासकीय

गतिविधियाँ चलाता था। ऐसे हालात में अंग्रजों द्वारा टैक्स की घोषणा ने विद्रोह की दबी चिंगारी को हवा देने का काम किया और मेघालय धू-धू कर जल उठा। अभी टैक्स का हंगामा मच ही रहा था कि तभी अंग्रेज़ों ने वर्तमान मेघालय के सुमेर वंश के जोबाय क्षेत्र में शवदाह के लिए मृतकों को श्मशानघाट ले जाने पर रोक लगा दी। यहां तक कि खासी-जैन्तिया लोगों को सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हथियार लेकर जाना भी मना कर दिया। विद्रोह का तात्कालिक कारण बनी एक घटना, जब अंग्रेज़ अफ़सरों द्वारा थालोंग नामक स्थान पर 'काशाद पास्तिएह' उत्सव में सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिए एकत्रित लोगों से, उनके हथियार छीनकर उनकी आँखों के सामने ही उसे आग की भेंट चढ़ा दिया गया। फिर क्या था? बस मेघालय में एक तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। यही तूफ़ान विद्रोह बन गया। कई अंग्रेज़ों को मार गिराया गया। यह युद्ध नङबाह के नेतृत्व में कई वर्षों तक चला। नङबाह जो एक मामूली हैसियत का युवक था लेकिन था संकल्प का पक्का—जो तिरोत सिं के युद्ध में भी भाग ले चुका था। उसने अभूतपूर्व ढंग से इस विद्रोह को संचालित किया। अंत में उसे धोखे से बीनार अवस्था में ही पकड़वा कर मंगवाया गया और फांसी पर चढ़ा दिया गया।

दिसंबर 1872 में पा तोगन संगमा भी राग रांगेरी युद्ध में लड़ते-लड़ते शहीद हो चुके थे। लगभग 100 वर्ष चले इस स्वतंत्रता युद्ध में पूर्वोत्तर का एक बड़ा भाग लहूलुहान हो गया था। पता नहीं किस पूर्वाग्रह के चलते हमारे इतिहासकारों की कलम ने उनके खून के एक कतरे को भी अपनी क़लम से दर्ज नहीं करने लायक नहीं समझा। अंग्रेज़ों के रिकॉर्ड में पूर्वोत्तर के रण-बांकुरों की कहानी एक बहादुर दुश्मन के रूप में, अनगाई शहादतों व लम्बे अर्से तक चली बगावतों के रूप में दर्ज होती रही और दर्ज होती रही लोकगीतों व लोक कथाओं में, जनमानस में। यह दर्ज न होने का दर्द भी आज रचनाकार के मन को मथता है।

मिज़ोरम में रानी रूपलियानी ने भी अंग्रेज़ों को अपने क्षेत्र में न घुसने देने की कसम खाई थी। अंग्रेजों द्वारा मिजोजनों को जबरन बेगारी कराने ले जाना, उसे कबूल न था। रानी ने विद्रोह कर दिया। उसे गिरफ़्तार कर लिया गया। चारों ओर से अंग्रेजों की शासन प्रणाली

व ईसाइयत के कठमुल्लेपन को चुनौतियाँ मिलने लगीं। इस प्रकार पूर्वोत्तर के आदिवासी ईसाई धर्म अपनाने के बावजूद अपनी संस्कृति, अपने कबीले और मातृसत्ता तक की परम्पराएँ और रीति-रिवाज़ बरकरार रखने में सफल हुए। उन्होंने अपनी पहचान और भाषा की लड़ाई भारत के बाक़ी आदिवासी क्षेत्रों–ख़ासकर झारखंड और महाराष्ट्र व मध्यप्रदेश के साथ ही साथ शुरू कर दी थी–भले उनका दूसरे क्षेत्र के आदिवासी विद्रोहियों से तालमेल नहीं हो पाया था। अंग्रेजों के विरुद्ध पूर्वोत्तर की सभी जनजातियों के सभी संघर्ष अपनी भाषा, संस्कृति, भौगोलिक सीमाएँ और राजनैतिक सत्ता सुरक्षित रखने हेतु हुए। गहराई में जाने पर यह पता चलता है कि पूर्वोत्तर में लगभग सभी स्थानों पर अंग्रेज़ों को अपने देश, राज्य या क्षेत्र से हटाने के जुनून ने युद्ध का रूप ले लिया था। कई वीर योद्धा इन युद्धों में शहीद हुए।

ये सारी कथाएँ लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं–लोककथाओं, लोकगीतों, लिजिन्द्रियों व बैलेड्स आदि में तो मिलती ही हैं, समकालीन लेखन में भी इन पर नाटक रचे गए हैं।

पहचान का संघर्ष

हालांकि हिन्दू शासकों ने पूर्वोत्तर पर महाभारत काल से चढ़ाइयाँ करनी शुरू कर दी थीं पर इन्होंने उनकी अधीनता स्वीकार न कर इनके अश्वमेघ घोड़े को ही नहीं बाँध लिया था बल्कि चित्राङ्गदा-पुत्र बर्बरीक ने तो अर्जुन को भी बाँध कर अपनी माता चित्राङ्गदा के दरबार में पेश कर दिया था। भले त्रिपुरा के 'बोरोक', मणिपुर के 'मैतेई' या असम के 'अहोम' वंशी राजा लोग हिन्दू धर्म के प्रभाव में आ गए थे और वे आर्यों के मित्र बनने के एवज़ में हिन्दू धर्म में क्षत्रिय का रुतबा पा गए थे, इसके बावजूद जनता ने अपनी मूल पहचान और संस्कृति क़ायम रखी। फलतः इनका साहित्यिक सृजन व इतिहास इनके लोकगीतों, लोककथाओं, बैलेड्स यहां तक कि मिथकों व शिल्प में भी मौजूद है। बोड़ो भाषा की 'देवधाय' नामक लिपि के अवशेष तो आज भी असम में दीमापुर के शाही द्वार और अन्य ऐतिहासिक धरोहरों के पत्थरों पर उत्कीर्ण लिपियों से प्राप्त किए जा सकते हैं। अहोम वंश भी इसी लिपि में अपना राजकीय कार्य चलाता था। तम्रेश्वरी मंदिर के पत्थरों पर

उत्कीर्ण लिपि में बोड़ो प्रार्थनाएँ उकेरी हुई हैं। हालांकि आज तक लोग उस लिपि को पढ़ नहीं पाए हैं। समकालीन साहित्य का सृजन भी इन्होंने काफी पहले शुरू कर दिया था चूंकि इन्हें लिपि मिल गई थी। यह अलग बात है कि भारत की बाकी हिन्दू या अन्य धर्मी आबादी अपनी कूपमण्डूकता के कारण खुद को श्रेष्ठ समझ कर, इन्हें अनदेखा करती रही और इन्हें जंगली या असभ्य कह कर अपमानित करती रही। यह भी एक अटूट सत्य है कि इन जंगली कहलाने वाले लोगों ने ही गौतम बुद्ध के बाद बने भारत की समतावादी, भाईचारावादी और मुक्तवादी संस्कृति को और प्रकृति एवं पर्यावरण को कायम रखा उन्होंने ईमानदारी से अपने आदिम मूल्यों व जनतांत्रिक प्रणाली को भी जिन्दा रखा; जबकि भारत के बाक़ी हिस्सों में इन्हें बर्बाद करने की होड़ लगी थी।

ये भारत की मुख्य-भूमि के लोग ही थे, जो वहां योजना बना कर व्यापार करने सच कहें तो वे योजनाबद्ध ढंग से पूर्वोत्तर के संसाधन लूटने ही आते रहते थे। दरअसल मणिपुर, त्रिपुरा और असम, बंगाल की संस्कृति से अधिक प्रभावित था। दरअसल असम पहले बंगाल का ही हिस्सा था। मणिपुर के राजा हिन्दु बन गए थे। त्रिपुरा में बंगाल के लोग भारी मात्रा में जा बसे थे। ऐसे पूर्वोत्तर में कतिपय सांस्कृतिक विकृतियां–वहां व्याप्त अंधविश्वासों के कारण पहले से ही मौजूद थीं। लेकिन पूर्वोत्तर में भी इतर भारतीयों (बंगलादेश समेत) व हिन्दू संस्कृति की घुसपैठ के कारण, वर्चस्वादी और दादागिरी का रुझान अपनी तमाम विद्रूपताओं के साथ विकसित होने लग गया था। मैदानी लोग येन-केन प्रकारेण पूर्वोत्तर में घुसपैठ कर रहे थे। किन्तु इन सबके बावजूद अस्मिता, भाषा और संस्कृति के नाम पर एक वृहद संघर्ष नागा, मिज़ोरम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय–यहां तक कि अहोम वंश के राजवंश के प्रभाव में सनातन धर्मी हिन्दू संस्कृति अपनाने वाले असम राज्य में भी– अंग्रेज़ों के ज़माने से ही शुरू हो गया था।

इसलिए यह कहना कि पूर्वोत्तर का विद्रोही नेतृत्व ईसाईयों के प्रभाव में अंग्रेज़ों की मदद करना चाहता था–अतार्किक व अनुचित है। वे तो अपनी अलग पहचान चाहते थे। वे अपनी संस्कृति व व्यवस्था क़ायम रखना चाहते थे–भारतीय संस्कृति की ग़ैरबराबरी की सामाजिक व्यवस्था उन्हें मंजूर नहीं थी। सत्य तो यह है कि भारत की तथाकथित

मुख्यधारा के शासक व व्यापारी, यहां तक कि भारत की शेष जनता भी इन्हें पहचानने से इनकार करती रही है। आज भी भारतीय जन इन्हें नहीं पहचानते। मुलाकात होने पर वे इन्हें चीनी, बर्मी, तिब्बती कह कर सम्बोधित करते हैं। इसलिए भी लगभग पूरा पूर्वोत्तर अपनी पहचान और अपने उद्‌भव व जड़ों की खोज के लिए विचलित रहता है।

"मैं कौन हूं, भारतीय मुझे पहचानते तक नहीं, वे मुझे अपनाते भी नहीं, मेरी शक्ल-सूरत उनसे तनिक भी नहीं मिलती, वे मुझे चीनी कहते हैं, तो मुझ पर राज क्यों करते हैं?" उनके मन में ये प्रश्न उठने लगे हैं–और उनके मन-मस्तिष्क को मथने लगे हैं।

'मेरा इतिहास क्या है?' इसकी खोज होनी शुरू हुई।

'हमें जंगली क्यों कहा जाता है?' वे इसका जवाब मांगने लगे हैं।

इस पुस्तक में हमने अलग-अलग भाषा व राज्यों के वीर नायकों व नायिकाओं की कथाओं के अतिरिक्त पूर्वोत्तर के भिन्न राज्यों में हुए विद्रोहों, प्रतिरोधात्मक आन्दोलनों पर शोध-परक गाथाएँ व सामग्री प्रस्तुत की है। ये सभी गाथाएँ–लिजिन्द्रियां, लोककथाएँ या लोकगीत व टिप्पणियाँ पूर्वोत्तर के ही लेखकों द्वारा लिखी गई हैं। हमने इनका चयन कर हिन्दी में अनूदित कर प्रस्तुत किया है। इनके चयन और सम्पादन में काफी समय लगा। चूंकि अनूदित सामग्री की भाषा को परिष्कृत भी करना पड़ा हमने हिन्दी में कुछ गाथाएँ पूर्वोत्तर में उपलब्ध भिन्न ग्रन्थों व दस्तावेजों में दर्ज टिप्पणियों के आधार पर तैयार करके भी प्रस्तुत की गई हैं।

एक ही नायक पर भिन्न-भिन्न लेखकों ने अपने-अपने क्षेत्र में उपलब्ध सामग्री (लोकगीत, किवदंतियों, लोककथाएँ, ऐतिहासिक दस्तावेज आदि) से लेकर अपने-अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत की हैं। हमने सभी को सम्मानित करने का प्रयास किया है ताकि पूर्वोत्तर में घटित इस इतिहास को–गहराई तक समझा और जाना जा सके और शेष भारत उनसे अपना दर्द का रिश्ता जोड़ कर संवाद कायम करे। हर लेखक ने विद्रोह को या नायक के शौर्य को अपनी नज़र से देखा और लिखा है। इस प्रकार उस नायक के कई पक्ष हमारे सामने प्रस्तुत हो गए हैं, जिन्हें उसी रूप में प्रस्तुत करना हमने जरूरी समझा, ताकि शोध अधूरा न रह जाए।

अनुक्रम

I. पूर्वोत्तर : विद्रोह का इतिहास

खासी विद्रोह की पहल — *प्रस्तुति : रमणिका गुप्ता*
('द खासी कैनवास : लेखक जे.एन. चौधरी' पर आधारित) (खासी) 15

जैन्तिया विद्रोह — *प्रस्तुति : रमणिका गुप्ता*
('द खासी कैनवास : लेखक जे.एन. चौधरी' पर आधारित) (जैन्तिया) 35

खासी विद्रोह के वीर बांकुड़े — *प्रस्तुति : हैमलेट बारेह नागपकाइन्टा*
अनुवाद : अक़ील क़ैस (खासी) 43

उत्तर पूर्व का प्रथम विद्रोह — *प्रस्तुति : विश्व ज्योति बर्मन*
अनुवाद : योगेश कुमार 51

पूर्वोत्तर भारत के जन-प्रतिरोध का स्वर — *प्रस्तुति : अनिल बोरो*
अनुवाद : योगेश कुमार (बोड़ो) 59

II. शौर्य

मिजोरम

रानी रौपुइलियानी : अभूतपूर्व विद्रोहिणी — *ललसाङजुआली साइलो*
अनुवाद : सी. कामलौवा (मिजो) 69

मेघालय

राजा तिरोत सिं — *जीन साइमन इ्खार (खासी)* 75

'यू कियाङ नङबाह' : जैन्तिया संघर्ष के नायक — *शोभन एन. लमारे*
अनुवाद : अक़ील क़ैसस (जैन्तिया) 82

'का फान नांगलेट' खासी स्वतंत्रता संग्राम की जांबाज महिला
किनफामसिं नौंङकिनरिह, अनुवाद : रमणिका गुप्ता (खासी) 86

पा तोगन सांगमा — *बिजोया सावियान, अनुवाद : अक़ील क़ैस (गारो)* 89

नागालैंड

रानी गायदिनलियू : नागा रानी *के निपुनी माओ, अनुवाद : अक़ील क़ैस (नागा)* 91

त्रिपुरा

रत्नमणि : एक निडर रचनात्मक योद्धा *प्रस्तुति : नन्द कुमार देबबर्मा*
अनुवाद : रमणिका गुप्ता (कोकबोरोक) 96

असम

वीर सोम्भूधन *उत्तम चंद बर्मन, अनुवाद : अक़ील क़ैस (दिमासा)* 99

III. लिजिन्द्रियां

असम

जोहोलाव दैमालु एक लिजिन्द्री नायक *डॉ. मंगल सिंह हाजोवारी*
अनुवाद : राजीम वाला (बोड़ो) 109

फरार रौंगफारपी (रौंगफारपी रौंगवे) बोलोंग तेरांग की पुस्तक पर आधारित
प्रस्तुति : रमणिका गुप्ता (कार्बी) 113

वीर ऐओन तेरान : बोलोंग तेरांग की पुस्तक पर आधारित
प्रस्तुति : रमणिका गुप्ता (कार्बी) 117

वीर सेनापति थौंग नोकबे *सर बिदोर सिंह क्रो, अनुवाद : थेसो क्रापी (कार्बी)* 120

कठिन चुनौतियों का प्रेरक : थोंग नोकबे *प्रस्तुति : फुकन चंद्र फांगचू*
अनुवाद : रमणिका गुप्ता (कार्बी) 126

सोने के तीन टुकड़े : वायसोंग तेरांग *रमणिका गुप्ता (कार्बी)* 127

नागालैंड

वीर पेंतुचेपचेप की कहानी *सिबेस्टियन जुमवू, अनुवाद : अक़ील क़ैस* 129

IV. गीतों में वीर

बोड़ो गाथा : गीतों में वीर पूजा *मादाराम ब्रह्म (बोड़ो)*
अनुवाद : अक़ील क़ैस 139

बचीराम *मोहिनी मोहन ब्रह्म (बोड़ो), अनुवाद : रमणिका गुप्ता* 143